संपादकीय

मातृभाषा बनाम मौलिक अधिकार

सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया है कि तमाम विशेषज्ञ इस पर एकमत हैं कि प्राथमिक स्कूलों में बच्चे तभी बेहतर ढंग से विद्या प्राप्त कर सकते हैं, अगर पढ़ाई का माध्यम मातृभाषा हो। लेकिन उसने कर्नाटक सरकार के 1994 के उस आदेश को असंवैधानिक ठहरा दिया, जिसमें राज्य के प्राइमरी स्कूलों में कन्नड़ में शिक्षा देने की बात कही गई थी। पांच सदस्यीय संविधान पीठ के इस फैसले पर गौर करें तो असल में यह बुनियादी सवाल फिर उठ खड़ा होता है कि आखिर मातृभाषा किसे कहा जाएगा। कोर्ट ने ध्यान दिलाया कि संविधान में कहीं उल्लेख नहीं है कि मातृभाषा वही है, जिसमें बच्चा अपने को सहज पाता हो। साथ ही कोर्ट ने मौलिक अधिकारों से संबंधित संविधान के अनुच्छेदों 19 (भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता), 29 (अल्पसंख्यकों के हितों का संरक्षण) और 30 (संस्थाएं स्थापित करने के अल्पसंख्यकों के अधिकारों) की भी ऐसी व्याख्या की, जिससे भारत में मातृभाषा में शिक्षा के पैरोकारों को झटका लगा है। इस निर्णय का दायरा सिर्फ भाषाई अल्पसंख्यकों तक सीमित होता तो यह स्वीकार करने में किसी को दिक्कत नहीं होती कि ऐसे समूहों के बच्चों को अपनी मातृभाषा में शिक्षा पाने का हक है। अतः उन पर कन्नड़ नहीं थोपी जा सकती। परंतु कोर्ट ने अनुच्छेद 19(1) (ए) के तहत भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के प्रावधान की जो व्याख्या की उससे असहमत होने की गुंजाइश है। कोर्ट ने कहा कि भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के तहत बच्चे की अपनी पसंद की भाषा में शिक्षा पाने की स्वतंत्रता भी शामिल है। यानी बच्चे या उसकी तरफ से उसके अभिभावक को शिक्षा का माध्यम चुनने की आजादी है। एक औपनिवेशिक अतीत वाले समाज में, जहां अपनी भाषाओं की हीनता का भाव व्याप्त हो और अभिजात्य वर्गों के स्वार्थ अंग्रेजी का वर्चस्व कायम रखने से जुड़े हों वहां ऐसी आजादी किस तरह का भाषाई भेद पैदा करती है, यह विचार का अहम पहलू है। अंग्रेजी की अपनी खूबियां हैं। परंतु यह भी सच है कि इसी को माध्यम बनाने की मजबूरी आज भी लाखों बच्चों की नैसर्गिक प्रतिभा को कुंठित कर रही है। सर्वोच्च न्यायालय के ताजा फैसले से इस परिघटना पर उठने वाले सवाल कमजोर पड़ेंगे। क्या इस निर्णय पर पुनर्विचार नहीं होना चाहिए?

बात पते की

बुद्धिमान व्यक्ति के स्वभाव में ही आमोद-प्रमोद के प्रति उदासीनता होती है पर मूर्ख उसके गुलाम होते हैं।

-एपिक्टेटस, ग्रीक दार्शनिक

विश्लेषण

कम मतदान के बाद सत्ता जाने और ज्यादा मतदान के बाद भी सत्ता कायम रहने के कई उदाहरण

भारी मतदान से बदलाव जरूरी नहीं



संजय कुमार
डायरेक्टर, सेंटर फॉर स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसायटीज
sanjay@csds.in

इस आम चुनाव में भारी मतदान होने का जरूरत से ज्यादा जश्न मनाया जा रहा है। ताजा अनुमानों के मुताबिक इस बार लोकसभा चुनाव के इतिहास में सबसे ज्यादा मतदान होने का रिकॉर्ड बन जाएगा। इसके पहले 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद हुए लोकसभा चुनाव में सर्वाधिक 64 फीसदी मतदान हुआ था। ऐसा लगता है कि इस बार कुछ प्रतिशत अंकों से यह आंकड़ा भी पार हो जाएगा या कम से कम उसके निकट तो पहुंच ही जाएगा, इसकी पूरी उम्मीद है।

केंद्रीय चुनाव आयोग ने मतदाताओं को मतदान केंद्रों तक लाने के लिए जो प्रयास किए, लगता है उसका काफी असर हुआ है। मतदाताओं को प्रेरित करने के लिए बड़े पैमाने पर अभियान चलाने के लिए चुनाव आयोग सराहना का जायज हकदार है। मगर यदि हम अब तक हुए मतदान के पैटर्न को देखें तो पाएंगे कि मतदान उन राज्यों में बढ़ा है, जहां पिछले वर्षों में मतदान कम हुआ था। इसके विपरीत तथ्य यह बताते हैं कि जिन राज्यों में पूर्व में भारी मतदान हुआ है वहां इस बार मतदान घटा है या उसी स्तर पर रहा है। यदि चुनाव आयोग को इस बार के भारी मतदान का श्रेय है तो वह इसके पहले कई राज्यों में कम मतदान के दोष से भी नहीं बच सकता। यानी मतदान बढ़ाने के लिए ऐसे प्रयास उसे पहले के चुनावों भी करने चाहिए थे।

ज्यादा मतदान के इस बार के आंकड़ों का सावधानी से विश्लेषण किया जाए तो संकेत मिलता है कि वास्तव में वहां मतदान कम हुआ है या उसी स्तर पर बना हुआ है, जहां ज्यादा मतदान हुआ करता था। उदाहरण के लिए नगालैंड, सिक्किम, त्रिपुरा, लक्षद्वीप या पुडुचेरी जैसे राज्यों व केंद्र शासित प्रदेश में 2009 के दौरान 80 फीसदी से ज्यादा वोट डाले गए थे। इन राज्यों में इस बार मतदान में मामूली ही सही पर कमी आई है।

केरल, मणिपुर, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में 2009 के चुनाव के दौरान 70 से 80 फीसदी वोट डाले गए थे। इसे तो भारी मतदान ही कहा जाना चाहिए। वहां इस बार या तो मामूली बढ़त देखी गई या वहां मतदान उसी स्तर पर रहा है। उधर, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, झारखंड, छत्तीसगढ़,



गुजरात, राजस्थान, बिहार व उत्तरप्रदेश में मतदान में बहुत ज्यादा बढ़ोतरी हुई। 10 से 20 फीसदी ज्यादा मतदान होना बड़ी खबर मानी गई। वाकई यह बड़ी खबर है भी किंतु साथ में यह भी याद रखना बेहतर होगा कि इन राज्यों में भूतकाल में बहुत कम मतदान हुआ था। 50 फीसदी से कम या इसके करीब। यानी कुल मतदाताओं में से आधे मतदाताओं ने मतदान में भाग ही नहीं लिया था।

हालांकि, इस बार के ज्यादा मतदान का बहुत कुछ मतलब निकाला जा रहा है। व्याख्या की जा रही है कि यह अनिवार्य रूप से बदलाव के लिए किया गया मतदान है। कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के फीके प्रदर्शन और इसके प्रति लोगों के असंतोष को देखते हुए इसमें तो कोई शक नहीं कि सत्तारूढ़ गठबंधन हार की ओर बढ़ रहा है। जनमत सर्वेक्षणों में भी यूपीए सरकार की जबर्दस्त हार और भाजपा नीत एनडीए सरकार की वापसी की संभावना जताई गई है। किंतु यह सिर्फ भारी मतदान का नतीजा नहीं है। यह इसलिए है कि लोग बढ़ती कीमतों, भ्रष्टाचार और विकास के अभाव से नाखुश थे। लोगों में सरकार के प्रति गहरी नाराजी है।

तथ्यात्मक दृष्टिकोण तो यह कहता है कि भारी मतदान को हमेशा ही बदलाव के वोट के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। 1977 से 1980 के लोकसभा चुनाव के बीच मतदान करीब चार फीसदी गिरा था और सत्तारूढ़ जनता पार्टी की हार हुई थी। इसी तरह 1989 और 1991 के लोकसभा चुनाव के बीच मतदान 6 फीसदी कम हुआ पर चंद्रशेखर के नेतृत्व वाली जनता दल सरकार को 1991 में भारी पराजय मिली थी। इसी तरह 1999 के बाद 2004 के लोकसभा चुनाव में मतदान 2 फीसदी घटा मगर अटलबिहारी वाजपेयी सरकार सत्ता गंवा बैठी जबकि तब उसके सत्ता में लौटने की प्रबल संभावना व्यक्त की जा रही थी। नतीजे भाजपा के लिए ही नहीं मीडिया के लिए भी चौंकाने वाले रहे। ऐसे भी कम उदाहरण नहीं है कि मतदान ज्यादा हुआ पर तत्कालीन सरकार दोबारा सत्ता में लौटीं 1962, 1967, 1984 के आम चुनावों में इसके पहले के चुनाव की तुलना में ज्यादा मतदान हुआ, लेकिन इन सब चुनावों में तब की सरकारें फिर चुनी गईं। यानी यथास्थिति ही बरकरार रही।

अगर आप पिछले पांच साल में हुए विभिन्न राज्यों में हुए विधानसभा चुनावों को देखें तो यही कहानी मिलेगी। 2008 और 2013 के बीच विभिन्न राज्यों में 30 विधानसभा चुनाव हुए। इन चुनावों में से 24 चुनाव में पिछले चुनावों की बनिस्बत मतदान का प्रतिशत बढ़ा जबकि 6 चुनावों में घटा। जहां मतदान बढ़ा था, उनमें से 12 राज्यों में सरकार बदली जबकि शेष 12 में वही सरकारें रहीं। यानी दोनों तरह के परिणाम देखने को मिले। कम मतदान वाले 6 चुनावों में से 5 में तो सरकारें फिर सत्ता में लौटीं जबकि एक सरकार सत्ता से बेदखल हुई। यानी कम मतदान ने भी बदलाव लाया।

यह गत पांच वर्षों की कहानी नहीं है, यही ट्रेंड 1989 और 2008 के बीच भी देखा गया, जिस दौरान विभिन्न राज्यों में 110 चुनाव हुए। इसमें 42 चुनावों में तो मतदान बढ़ा जबकि 31 में मतदान घटा जबकि 37 चुनावों में मतदान का प्रतिशत वही रहा। जहां मतदान ज्यादा हुआ उनमें से 28 चुनाव के नतीजों में सरकारें बदलीं जबकि 14 में सरकारें फिर सत्ता में आईं। इसके विपरीत जहां मतदान कम हुआ उन 31 चुनावों में से 18 मामलों में सरकारें बदलीं जबकि 13 में वही सरकारें रहीं। यानी कम मतदान से बदलाव के उदाहण ज्यादा रहें। जाहिर है कि भारी मतदान का नतीजा सरकार बदलने में होता है और कम मतदान से यथास्थिति बनी रहती है, इसके पक्ष में कोई ठोस ट्रेंड नहीं मिलता।

कई दशकों से भारतीय चुनाव की बहस पर यही आम धारणा हावी रही है कि ज्यादा मतदान बदलाव दर्शाता है तो कम मतदान यथास्थिति का संकेत होता है। खेद है कि बहुसंख्यक विश्लेषक, राजनीतिक टिप्पणीकार, पत्रकार और यहां तक कि विभिन्न दलों के राजनेता बिना आधारभूत तथ्यों की पड़ताल किए इस अवधारणा को मानकर अपना नजरिया रखते रहे हैं। पिछले तीन दशकों के मतदान और उससे निकले नतीजे इस पुरानी अवधारणा को खारिज करने के लिए पर्याप्त हैं कि भारी मतदान सत्ता विरोधी रुख का संकेत होता है।

करंट अफेयर्स

नरेन्द्र मोदी के इंटरव्यू को लेकर उठे विवाद में यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रसार भारती की स्वायत्तता एक तरफ सरकार और दूसरी तरफ बाजार की खींचतान में फंसी हुई है।

आखिर किसके लिए है प्रसार भारती?



■ अरुण कुमार त्रिपाठी

दूरदर्शन की तरफ से नरेंद्र मोदी के इंटरव्यू को देर से और काट-छांट कर दिखाए जाने पर बवाल मच गया। प्रसार भारती के सीईओ जवाहर सरकार के इस बयान पर यकीन करने का कोई कारण नहीं दिखता कि उन पर सूचना और प्रसारण मंत्री मनीष तिवारी का दबाव था। दूसरी तरफ डीडी न्यूज के महानिदेशक एसएम खान मोदी से किए गए सवालों को ही गलत बता रहे हैं और इसी वजह से उन्होंने इंटरव्यू को संतुलित करने के लिए उसमें काट-छांट और देरी को जायज ठहराया है।

अगर प्रसार भारती स्वायत्त होती तो वह इंटरव्यू कम से कम इस तरह से तो संपादित न होता। कोई इंटरव्यू देने वाला यह नहीं कह सकता कि उसकी सारी बात जस की तस जाएगी ही। हां, वह ऐसा जरूर कह सकता है कि उसके खास हिस्सों को न निकाला जाए। मोदी के इंटरव्यू के जिस हिस्से को संपादित किया गया उससे सद्भाव की जो छवि जा रही थी वह रोक दी गई। मोदी अब टकराव वाली बातें बहुत कह चुके हैं और सद्भाव छवि चाहते हैं। जबकि कांग्रेस को उनकी टकराव और कटुता वाली छवि अनुकूल लगती है और वह इसीलिए वैसा कर रही है।

बड़ा सवाल है प्रसार भारती जैसी सार्वजनिक प्रसारक संस्था की स्वायत्तता का। सूचना प्रसारण मंत्री का यह दावा कि प्रसार भारती स्वायत्त है, हाल में पेश की गई सैम पित्रोदा समिति की इस रिपोर्ट से खारिज हो जाता है कि प्रसार भारती को स्वायत्त बनाना चाहिए और उसके लिए उसे आर्थिक साधनों को जुटाने का उपाय करना होगा। अभी तो यह नई नियुक्तियों और नई परियोजनाओं को शुरू करने के लिए भी सरकार के सामने गिड़गिड़ाती रहती।

अगर कांग्रेस की सरकार ने 1990 में पास हुए प्रसार भारती कानून को 1997 तक लागू नहीं होने दिया था। एनडीए सरकार ने भी उसके साथ कोई अच्छा बर्ताव नहीं किया। 2001 में सोमनाथ चटर्जी के नेतृत्व में बनी संसदीय समिति की रपट में भी कहा गया था कि 'एनडीए' सरकार प्रसार भारती कानून को लागू नहीं कर रही है। वह दूरदर्शन में भ्रष्टाचार होने दे रही है। तब सूचना और प्रसारण मंत्री प्रमोद महाजन ने कहा था। 'हमारा प्रसार भारती जैसी संस्था में यकीन नहीं है। मैं चाहता हूं कि दूरदर्शन सरकार के ही अधीन रहे।'

गौरतलब है कि प्रसार भारती को विधिवत गठित करने का काम संयुक्त मोर्चा जैसी सरकार ने किया जिसके तमाम घटक उस राष्ट्रीय मोर्चा से जुड़े थे जिसकी सरकार ने 1990 में यह कानून पास किया था और उसके हटते ही कांग्रेस की नरसिंह राव सरकार ने उसे ठंडे बस्ते में डाल दिया था। इसलिए क्या प्रसार भारती जैसी संस्था को जीवन और स्वायत्तता पाने के लिए तीसरे मोर्चे की कमजोर और अस्थिर सरकार ही उपयुक्त है? प्रसार भारती की स्वायत्तता एक तरफ सरकार और दूसरी तरफ बाजार की खींचतान में फंसी हुई है। ऐसे में प्रश्न यह है कि ज्ञान व सूचनाओं की इतनी बड़ी थाती की मालकिन संस्था की आंतरिक रचनात्मक शक्तियां पूरी तरह मुक्त होकर कोई कमाल दिखा पाएंगी?

-लेखक दिल्ली स्थित राजनीतिक विश्लेषक हैं।
tripathiarunk@gmail.com

जीने की राह

आत्मा पर टिककर हासिल करें शक्ति



शायद ही कोई ऐसा इंसान हो, जिसे बिना बाधाओं के सफलता मिली हो। समस्याएं, बाधाएं, परेशानियां सफलता के मार्ग पर आएंगी ही। यदि किसी को सीधे सफलता मिल गई तो वह उसे ज्यादा दिन पचा नहीं पाएगा। सफलता के मार्ग पर हुए संघर्ष में मनुष्य अपनी गहराई नाप लेता है। सबकुछ ठीकठाक चलता तो कोई भी अपने भीतर नहीं उतरता। संसार में बड़ा रस है। इस रसपान को करते हुए कोई भीतर क्यों मुड़े, लेकिन जब यह रस गला घोंटने लगता है, तब मनुष्य भीतर उतरता है। इसलिए असफलता के इस दौर में केवल बाहर टिककर निराश न हों। योग की सीढ़ियों से भीतर उतरें, आपको ऊर्जा के भंडार में से यह आवाज सुनाई देगी कि किसी न किसी को तो सफल होना ही है, तो फिर वह हम क्यों नहीं हो सकते। इसी का दूसरा नाम आत्म-विश्वास और उत्साह है। भीतर उतरने वाला व्यक्ति समझ जाता है कि कुछ यात्राएं अकेले ही करनी चाहिए। अध्यात्म में एकांत भी शक्ति देता है। दूसरे लोगों की टिप्पणियां, आलोचनाओं के तीर, निंदाओं के वाक्य आपको थका सकते हैं। इसलिए इन सब में अपनी शक्ति बर्बाद न करें। योग का समय बढ़ा दें, क्योंकि हम बाहर की दुनिया में संघर्ष कर रहे होते हैं शरीर से। ऊर्जा के मामले में शरीर की अपनी सीमाएं हैं। वह थक जाता है, फिर मन भी उसे विचलित करता रहता है। यदि आप शरीर और मन से कट कर आत्मा पर टिक गए तो यहीं से परमात्मा की शक्ति आपके साथ हो लेती है। असफलता के बाद फिर एक नई यात्रा शुरू होती है, जो सफलता के शिखर पर ही समाप्त होगी।

-पं. विजयशंकर मेहता | humarehanuman@gmail.com
web:hamarehanuman.com

जीवन दर्शन

इंदिरा गांधी की सच्ची समाज सेवा

भारत की पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय इंदिरा गांधी के जीवन का एक प्रसंग है। उन्होंने देश के बंटवारे के दौरान हुए दंगों में बहुतों की जान बचाई थी, किंतु उसके कारण उन्हें हमलावर और उनके शिकार दोनों का ही रोष झेलना पड़ता था। हिंसा के शिकार लोगों का इसलिए कि उनकी बहुत सी परेशानियां और समस्याएं होती थीं, जिनका तत्काल निराकरण नहीं हुआ तो रोष पैदा होता था। महीनों तक शरणार्थियों का अटूट तांता बंधा रहता था। वे रोज सबेरे आठ बजे से एक बजे तक और कई बार दोपहर बाद भी एक के पीछे एक विस्थापितों की टोलियों से मिलतीं। इनमें से ज्यादातर के लिए उनका दुखड़ा सुन लेना ही पर्याप्त होता था। हालांकि कई मामले ऐसे भी होते थे, जिनमें कुछ करना उनके बस में नहीं होता था। इसी भीड़ के साथ आई थी- सत्या। लगभग बीस वर्ष की सत्या एक रेलवे-क्रॉसिंग चौकीदार की बेटी थी। बचपन में रेलगाड़ी के नीचे आ जाने से उसके दोनों पैर जांघों के पास से कट गए थे। हाथों के बल घिसटना उसके लिए चलने का एकमात्र तरीका था, जिससे उसका शरीर बेढंगा हो गया था। उसकी मदद करने का एकमात्र तरीका था- कृत्रिम पैर लगवाना। इंदिरा गांधी ने पता किया कि पूना का कृत्रिम अवयव केंद्र यह काम कर सकता है, किंतु वह केवल सेना के लोगों के लिए था। उस समय देश में यह काम करने वाली वह एकमात्र संस्था थी। तब के रक्षामंत्री सरदार बलदेवसिंह को मनाने में उन्हें महीनों लग गए, किंतु अंततः संस्था के दरवाजे गैर फौजियों के लिए खुल गए। सत्या को पूना केंद्र में भर्ती करने की अनुमति मिल गई। कुछ समय बाद उसे चलते देख इंदिरा गांधी को रूहानी खुशी हुई। असहायों की सहायता अंतिम सीमा तक जाकर करने वाला सच्चा समाज सेवक होता है और ऐसी समाज सेवा से समाज की अंतिम पंक्ति के व्यक्ति तक मदद पहुंचती है।

Web Bhaskar

नेट की दुनिया पर उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ कंटेंट एक जगह वेब भास्कर में...

इनक्रेडिबल

एरियल व्यू में दिखाया अमेरिका का शहरीकरण



जर्मन फोटोग्राफर क्रिस्टोफ गिलेन्स ने एरिजोना में बसे नए उपनगर की तस्वीर में बेहतरीन वास्तुकला दिखाई है। उन्होंने हेलिकॉप्टर से दर्जनों शॉट लिए, उसके बाद यह फोटो उन्हें सबसे ज्यादा पसंद आया। वे पहले भी फोटोग्राफी के जरिए बढ़ते शहरीकरण को दिखाते रहे हैं। क्रिस्टोफ कहते हैं, अमेरिका ही नहीं, कई देशों में शहरीकरण तेजी से जारी है। यही होता रहा तो एक दिन जंगल पूरी तरह खत्म हो जाएंगे और वन्यजीवों पर खतरा मंडराएगा। •uncubemagazine.com

स्टाइलिश

तेज रफ्तार और संतुलन के लिए अच्छी है ट्रांसपरेंट डोंगी

अब तक आपने कई तरह की नाव, याट और डोंगी देखी होंगी। यह ट्रांसपरेंस डोंगी है, जो बेहतर स्थायित्व, पानी धकेलने की तेज गति और अच्छा संतुलन बनाए रखने के लिए जानी जाती है। इसकी सीट एडजस्टेबल है, जिससे आप पैरों को भी आराम दे सकेंगे और ज्यादा समय तक नौकायन का लुत्फ उठा सकेंगे। दो



लोगों के लिए बनी यह डोंगी 192 किलोग्राम भार सह सकती है। फाइबर मिक्स ग्लास मटैरियल से बनी इस डोंगी में एल्युमीनियम की फ्रेमिंग है। इसीलिए इसका वजन कम है। किनारे से इसे पानी में उतारना और बैठने के बाद पानी को तेजी से पीछे धकेलने में यह सहायक है। इस डोंगी को तटों से निकटतम आइलैंड, गांव या कस्बे तक जाने के लिए उपयुक्त माना जाता है। खासतौर से ऑस्ट्रेलिया, अमेरिका, हवाई द्वीप और इटली के वेनिस में इसका ज्यादा उपयोग किया जाता है। •rnrassociates.com

3डी तकनीक से बना ओस्टेओइड 40 फीसदी जल्दी ठीक करता है फ्रैक्चर

इनोवेशन

तुर्की के इंडस्ट्रियल डिजाइनर डेनिज कारासहिन ने 3डी तकनीक से ओस्टेओइड तैयार किया है। यह ऐसा चिकित्सा उपकरण है, जो फ्रैक्चर को पारंपरिक पद्धति (प्लास्टर) के मुकाबले 40 प्रतिशत तेजी से जोड़ता है। इसमें वेन्टीलेशन होल हैं, जिससे बदबू या खुजली की समस्या नहीं होती है। जबकि पारंपरिक पद्धति में मरीज को इस तरह की परेशानियों से भी जूझना पड़ता है। वे कहते हैं, ओस्टेओइड के साथ लो इन्टेन्सिटी पल्स का अल्ट्रासाउंड सिस्टम 'लिपस' होता है। उसका उपयोग एक दिन में केवल 20 मिनट तक करना होता है। 3डी तकनीक वाली यह पद्धति ऐसे फ्रैक्चर ठीक करने की संभावना 80 प्रतिशत तक बढ़ाने में सक्षम है, जिनमें तीन से छह महीने तक कोई सुधार नजर नहीं आया हो।





प्लास्टर से पतला और वजन भी कम

डेनिज कहते हैं, ओस्टेओइड बनाने का उद्देश्य मरीज को ज्यादा आराम देना और फ्रैक्चर ठीक होने का समय कम करना है। पारंपरिक प्लास्टर पद्धति की तुलना में ओस्टेओइड पर्यावरण के अनुकूल, पतला और कम वजनी है।

3डी स्कैनर करता है चोट की पहचान

ओस्टेओइड किसी भी मरीज की चोट के अनुसार तैयार किया जा सकता है। 3डी बॉडी स्कैनर चोट वाली जगह पहचान लेता है। उसका डाटा सॉफ्टवेयर तक ट्रांसफर करना होता है और फिर उस जगह के अनुसार ओस्टेओइड बन जाता है। •pocket-lint.com

1910 में लंदन से मैनचेस्टर तक की गई थी बाइप्लेन की अनोखी रेस

एविएशन

लंदन में अप्रैल 1910 में मैनचेस्टर तक बाइप्लेन की रेस लगाई गई थी। इसके विजेता फ्रांस के एविएटर लुईस फॉल्हन रहे थे। उन्होंने ब्रिटिश एविएटर क्लाउड ग्राहम को हराया था। हवा के दबाव से उड़ने वाले बाइप्लेन से फॉल्हन ने 297 किमी का सफर पूरा करके यह रेस जीती थी। रेस के दौरान उनके बाइप्लेन की औसत गति 70 किमी प्रतिघंटा थी। जबकि क्लाउड ग्राहम के बाइप्लेन में खराबी आ गई थी, इसके चलते उन्हें रुकना पड़ता और वे रेस हार गए थे। हालांकि रेस पूरी होने के बाद दोनों ने लंदन के सेवॉय होटल में साथ लंच करके खुशियां



बांटी थी। ब्रिटेन में बाइप्लेन की यह पहली रेस थे। इसके 40 साल बाद भी फॉल्हन उस दिन को नहीं भूल पाए थे। अप्रैल 1950 में उन्होंने पहली रेस की 40वीं सालगिरह मनाई और मैन्चेस्टर से फाइटर जेट में पैसेंजर के रूप में उड़ान भरी थी। •ovguide.com

ट्विटर

डॉलर की हालत वैश्विक अर्थव्यवस्था के लिए चुनौती बन रही है। हम क्या कर सकते हैं? मेरी नई पुस्तक 'मनी' में यह सब है। -**स्टीव फोर्ब्स**, सीईओ-फोर्ब्स

नरेंद्र मोदी को वाराणसी में प्रवेश तक की इजाजत नहीं, राहुल गांधी को अमेठी के बूथ में घूसने की छूट दे दी। इसे चुनाव आयोग का भेदभाव नहीं तो और क्या कहें? -**नौरम मोहन**

नाइजीरिया में और स्कूली छात्राओं का अपहरण हो गया और सीएनएन चैनल मोनिका लेविंस्की की नई किताब के कवरेज में लगा रहा। धन्यवाद सीएनएन। - **डेनियल**, न्यूयॉर्क

परिणाम जो भी हो, नेताओं ने हमें अब तक के इतिहास का सबसे मनोरंजक चुनाव दिखाया। कुछ लोग आईपीएल में भी मनोरंजन के लिए धन्यवाद देते हैं! -**चेतन भगत**, लेखक

मुझे ऐसा लगने लगा है, सोशल मीडिया न केवल इस चुनाव का परिदृश्य बदल रहा है, बल्कि हमारे समाज में भी परिवर्तन ला रहा है। -**अभिषेक सिंघवी**, कांग्रेस नेता

आज सोशल मीडिया का दौर है, यह तेजी से फैल रहा है। चुनाव आयोग भी सोशल मीडिया की गतिविधियों को समझता है, लेकिन कर कुछ नहीं सकता। -**हरेश राइचुरा**, नई दिल्ली

पश्चिम बंगाल में ममता दीदी प्रवासियों का स्वागत करती हैं, पर मेरा क्यों नहीं? -**तस्लीमा नसरीन**, बांग्लादेशी लेखिका

बीता हुआ कल हम बदल नहीं सकते, भूल नहीं सकते, मिटा नहीं सकते। उसे स्वीकारने के अलावा हमारे पास कोई रास्ता नहीं होता। - **विल स्मिथ**, अभिनेता

नेशनल आइडिएशन न्यूजरूम